आंतरराष्ट्रीय बहुभाषिक शोध पत्रिका

# प्रिंटिंग एरिया

**Printing Area International Interdisciplinary Research Journal in Marathi, Hindi & English Languages**

**July 2021, Issue-78, Vol-01**

अतिथि संपादक :

१. शिवशेट्टे गोविंद

२. डॉ. राठोड अनिल

३. डॉ. भगवान कदम

४. डॉ. शिंदे प्रकाश

५. डॉ. शेख मुखत्यार

६. डॉ. वारले नागनाथ

७. डॉ. यशवंतकर संतोषकुमार

"Printed by: **Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.** Published by **Ghodke Archana Rajendra** & Printed & published at Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.,At.Post. Limbaganesh Dist,Beed -431122 (Maharashtra) and Editor **Dr. Gholap Bapu Ganpat.**

Reg.No.U74120 MH2013 PTC 251205

**Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.**

At.Post.Limbaganesh,Tq.Dist.Beed

Pin-431126 (Maharashtra) Cell:07588057695,09850203295

harshwardhanpubli@gmail.com, vidyawarta@gmail.com

All Types Educational & Reference Book Publisher & Distributors / www.vidyawarta.com

82

95. SGG-JY-2021

# ...तिथि संपादक की भूमिका

साम...जिक, ... तथा साहित्यिक स्तर पर बुद्धिजीवियों और चिंतकों के बीच हाशिये के वर्ग को ... से बहस जारी है । सदियों से प्रस्तावित व्यवस्था ने दलित, स्त्री, आदिवासी तथा ... वर्ग को उपेक्षित रखा था। स्वाधीनता के पश्चात दबे–कुचले वर्ग की आवाज समाज ... साहित्यशिल्पियों के द्वारा उठाई जाने लगी। पत्र–पत्रिका, सभा ,गोष्ठियों ,विचार–विमर्श, ... तथा सम्मेलन आदि में उक्त वर्ग की आवाज को स्वर बध्द किया । भारत की तमाम भाषा... ...हित्य में भी उपेक्षित वर्ग की समस्याओं पर चिंतन–मंथन आरंभ हुआ । इसी कड़ी को ... का इस विशेषांक के द्वारा हमारा लघु प्रयास हैं।

समय सा... परख रखने वाला सृजक जी समकालीनता के साथ न्याय कर पाता। समकालीनता शब्द बेहद व्यापक और विस्तृत अर्थ प्रतिपादित करता है। सामान्यत: जो सृजक अपने समय के साथ प्रतिबद्ध होता है ,उसे समकालीनता के दायरे में रखा जाता है । समकालीन था मनुष्य को ना सिर्फ अपने समय के साथ जोड़े रखती है बल्कि भविष्य के प्रति भी जागरूक बनाती है । रचनाकार की समय के साथ की प्रतिबद्धता ही उसके समकालीन होने का प्रमाण है । रचनाकार समकाल में व्याप्त विकृतियों, विद्रूपताओं के विरुद्ध सचेत होकर उसके खिलाफ आवाज उठाता है । जिसका परिणाम वर्तमान के साथ–साथ भविष्य पर अधिक होता है । सामान्यत: हिंदी में नई कविता नई कहानी के बाद का समय समकालीन साहित्य का माना गया है।

समकालीन दौर में सामाजिक,पारिवारिक ,साहित्यिक दहलीज पर जिसने परिवर्तन की दस्तक दी उसमें स्त्रीवादी दृष्टिकोण से लिखा गया साहित्य महत्वपूर्ण है । 'द सेकंड सेक्स' लिखने वाली सिमोन द बोउवार ने स्त्री लेखन का शंखनाद किया । भारत में कोई अज्ञात लेखिका 'सीमंतनी उपदेश 'के द्वारा स्त्री की व्यथा–कथा को प्रतिपादित करती है । मराठी की लेखिका ताराबाई शिंदे, हिंदी की महादेवी वर्मा जैसी लेखिकाओं ने समस्यांओं को खुलकर व्यक्त किया । समकालीन दौर में अनेकों स्त्री लेखिकाओं ने लेखन के क्षेत्र में उतर कर स्त्री की दबी आवाज को बुलंद कर रही है । स्त्री के प्रति मानवता, निजीपन, स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता की पहल करने वाली लेखिकाओं में मैत्रेयी पुष्पा , चित्रा मुद्गल ,नासिरा शर्मा ,कुसुम अंसल ,जया जादवानी ,नमिता सिंह,मृदुला गर्ग, सूर्यबाला आदि के अलावा भी अनेक युवा लेखक, लेखिकांए इस आंदोलन को आगे बढ़ा रही है। स्त्री शक्ति, अस्मिता, लोकतंत्र द्वारा प्रदत्त अधिकार ,उसकी आत्मनिर्भरता ,स्वयं निर्णय आदि विषयों पर विचार– विमर्श और स्त्री समाज को एक नई, निश्चित दिशा मिले इसी पहल के साथ इस विशेषांक का संपादन किया गया जा रहा है।

समकालीन साहित्य में दलित साहित्य की विचारधारा ने सर्वाधिक प्रभावित किया है। सदियों से उपेक्षित, शोषित दलितों की व्यथा–वेदना को मुखर रूप से दलित साहित्यकारों ने अभिव्यक्त किया है। दलित साहित्य विमर्श आज हिंदी साहित्य की एक प्रमुख और स्थापित धारा के रूप में स्वीकृत हो चुका है । दलित साहित्य जिए हुए अनुभवों की वह दास्तान हैं, जो कभी व्यक्त ही नहीं होने दिया। आजादी के पश्चात निर्भीक होकर हाशिए के व्यक्ति की व्यथा वेदना को शब्द बध्द किया गया। भारत में सबसे पहले मराठी में दलित चेतना का आविष्कार हुआ । जबकि आज यही समग्र भारत मे दलित चेतना आंदोलन का स्वरूप धारण कर चुका है। शरणकुमार लिंबाले,प्र.ई. सोनकांबले,लक्ष्मण माने ,शांताबाई शेलके,आदि तमाम मराठी लेखकों ने अपने त्रासद अनुभव जगत को सटीक रूप में व्यक्त किया । हिंद्री में ओमप्रकाश वाल्मीकि,मोहनदास नैमिशराय ,डॉ.धर्मवीर, सूरजपाल चौहान ,जयप्रकाश कर्दम ,तुलसीराम, परमानंद आर्य आदि साहित्यशिल्पियों ने सृजनात्मक साहित्य के द्वारा दलितों की अस्मिता का सवाल उठाया । वर्णव्यवस्था,आर्थिक विषमता ,सामाजिक

संस्कार के लिए जगह न देने की दुर्दशा किन्नरों को भुगतनी पड़ी है। किन्नर भी मानव है उनके साथ मानवता का व्यवहार जरूरी है, यही समाज भूल गया था। उनके साथ सौहर्दपूर्ण और अपनत्व भरा व्यवहार होना अत्यंत आवश्यक है। और यही समय की माँग को ध्यान में रखकर इन साहित्यकारों ने पाठकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया है।

औद्योगिकरण वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण के कारण हमारी पारिवारिक व्यवस्था, विवाह व्यवस्था और समाज व्यवस्था ही हिल गई। इस वैश्वीकरण ने समाज को जितना प्रगतिशील और विकसित बनाया उतनी ही नई—नई समस्याओं कोहमारी झोली मे डाल दिया है । जिसमें संयुक्त परिवार का विघटन, पैसों को अत्याधिक महत्व देना और मानवीय मूल्यों की क्षति होने के कारण समाज में वश्द्धों की ओर देखने का नजरिया बदल गया है । अपमानित नजरिए से देखा जाने लगा उन्हें घर में रखने के बजाय वश्द्ध आश्रमों में रखा जाने लगा, बुजुर्गों के प्रति जो आदर और सम्मान का भाव था वहां वह तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाने लगा ।आज की इस तकनीकी भौतिकी और चकाचौंध की जिंदगी में संयुक्त परिवार और एकल परिवार में परिवर्तित होने लगे ।अब तो यह समय आया कि एकल परिवार में भी पत्नी अलग पति अलग तो बुजुर्गों के लिए स्थान ही नहीं रहा। बुजुर्गों का स्थान अब घर नहीं बल्कि वश्ध्दाश्रम मे मात्र रह गया है। उनकी समस्या उनके दुख—दर्द को साहित्य मुखरित किया जाने लगा जिसे सामान्यत: के लिए इस नए विमर्श की शुरुआत हुई है हिंदी में शब्दों की समस्याओं को लेकर उनके व्यथा और मैडम बनाऊं को लेकर उनकी त्रासदी को लेकर साहित्य लिखा गया है

समकालीन साहित्य का दौर उपेक्षितों के साहित्य का रहा है। होना भी वाजिब सी बात है क्योंकि सदियों से इस वर्ग को नजरांदाज किया गया था। आज स्त्री,दलित, आदिवासी, किन्नर ,वश्ध्द और विकलांग आदि की जीवन व्यथा,समस्या को केन्द्र मे रखकर सश्जनात्मक लेखन के साथ —साथ खुली चर्चाएं भी होने लगी है इस विशेषांक के द्वारा सुधी लेखक लिखे और सुधी पाठक पढे। इसी लिखने और पढने की प्रक्रिया द्वारा परिवर्तन की उम्मीद हम करेंगे.

दी है मैंने। हथियार मत छोड़ना। एक दिन तुम्हें ही जितना है। लौटकर आऊँगा मैं... जल्दी ही लौटूँगा अपने जंगलों में अपने पहाड़ों पर।...मुंडा लोगों के बीच फिर आऊँगा मैं।...तुम्हें मेरे कारण दुख न सहना पड़े इसलिए माटी बदल रहा हूँ मैं।...उलगुलान खत्म नहीं होगा''११ इसप्रकार नाटक के अंत पूर्व में बिरसा मुंडा के अंतिम मार्मिक, आवाह्नात्मक एवं संवेदनशील संवाद को नाटककार हृषीकेश सुलभ जी ने प्रस्तुत कर बिरसा गुंडा तथा उनके उलगुलान आंदोलन को यथोचित न्याय देने का भरसक प्रयास किया है। यही कारण है कि कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से नाटककार की यह नाट्यकृति सफल एवं सार्थक बन पड़ी है।

अंतत्वोगत्वा यही कहा जा सकता है कि, नाटककार ने प्रस्तुत नाटक के माध्यम से बिरसा मुंडा के जीवन संघर्षो के द्वारा आदिवासी समुदाय के जीवन संघर्षो को उजागर किया है। बहरहाल बिरसा मुंडा के संगठनात्मक कौशल ने लोगों को प्रेरित किया और उन्हें अंग्रेजी सत्ता, दिकुओं, महाजनों, जमींदारों और ठेकेदारों के चंगुल से बचाया और साथ ही आदिवासी जमीन पर पूर्ण स्वामित्व बात रखी। बिरसा मुंडा के इतिहास से हमें आज के संघर्ष के लिए अनेकों सिख मिलती है। जिस तरह आज आदिवासिओं पर अत्याचार बढ़ रहे है और उपनिवेशवादी नीतियाँ सरकारी नीतियॉ बन रही है, बिरसा का इतिहास और उनके सिध्दांत भविष्य के आदिवासी आंदोलनों के लिए एक ऐतिहासिक उदाहरंण पेश करता रहेगा।

**संदर्भ सूची :**


१. इक्कीसवीं सदी के कथा साहित्य में चित्रित विविध विमर्श — सं. डॉ. माधव मुंडकर, रिसर्च जर्नल दिसंबर २०१९ पृ.सं. ०७

2-www.abhivyakti-hindi-org.

३. धरती आबा—स्वगत— हृषीकेश सुलभ, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली पृ.सं. १०

४. धरती आबा — हृषीकेश सुलभ, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली पृ.सं. ७०

५. वही पृ.सं. ७०

६. वही पृ.सं. २९

७. वही पृ.सं. ३७

८. वही पृ.सं. ७४,७५

९. वही पृ.सं. ८४

१०. वही पृ.सं.९१

११. वही पृ.सं. ९५


59

# आदिवासी समाज जीवन की समर


डॉ. गोविंद गुंडप्पा शिवशेट्टे
हिंदी—विभाग,
महाराष्ट्र महाविद्यालय, निलंगा, जि. लातूर


**********

कई सदियों से हशिए पर रहा आदिवासी समाज आज नक्सलवाद, ऑपरेशन 'उलगुलान', 'ग्रिनहंट' की त्रासदी के कारण संवेदनशील रचनाकारों, नेताओं, समाजसेवियों के बीच चर्चा और विमर्श का प्रमुख केंद्र बन गया है । यूँ तो आदिवासियों की हत्या करने, शोषण करने और खदेड़ने का कार्य अरसो—बरसों से जारी है । उन्हें एक सोची समझी साजिश के साथ दुर्गम जंगलों, पहाड़ों में सभ्यता से दूर आदिम जीवन जीने के लिए मजबूर किया गया । यहाँ के तथाकथित प्रस्थापितों ने आदिवासियों पर अपना आतंक बनाए रखने के लिए न उनकी संस्कृति को विकसित होने दिया और न ही उन्हें मूल धारा में शामिल किया बल्कि इस समाज को दैत्य, राक्षस करार देकर उसके इतिहास और संस्कृति को बदनाम किया, फलस्वरूप इस समाज की सोच, विचार, भाषा, संस्कृति का विकास रूक गया और सभ्यता के दौड़ में वे पीछे पड़ते गये । यह लोग अन्य दुनिया से बेखबर, दुर्गम जंगलों, गुफाओं में अनेक मुसीबतों का सामना अपने कठिन परिश्रम और साहस के साथ कर उन्होंने अपना अस्तित्व ही नहीं बचाया तो अस्मितता, आस्था, परंपरा और संस्कृति को भी कायम रखकर अपनी विशिष्ट पहचान बनाए रखी । इस प्रकार प्रकृति की गोद में पैदा हुआ, पला और जवान हुआ यह आदिवासी प्रकृति की तरह ही सहनशीलता की सीमा तक अत्याचारों को सहने की क्षमता रखता है और उसके समाप्त होते ही प्रकृति की तरह ही ज्वालामुखी और दावाग्नि—सा रौद्र रूप धारण कर अन्यायी अत्याचारियों

साहूकार लोग अपने पैसे के बदले में उनके घर, जमीन, पशु आदि के साथ स्त्रियों को भी रिहान के रूप में अपने पास रख लेते हैं। आर्थिक विवशता से तंग आकर इस समाज की महिलाएँ वेश्या व्यवसाय की ओर आकर्षित हो रही है, जिसके कारण अनेक समस्याएँ निर्माण हो रही हैं।

औद्योगिक क्षेत्र में निवास करनेवाले संथाल जैसे आदिवासियों की अलग समस्याएँ हैं। औद्योगिक विकास के नाम पर उनकी जमीन छीन ली जाती हैं, उसका योग्य मुआवजा भी उनको नहीं मिलता। चाय, बगीचों कोयला खदान आदि में मजदूरी करनेवालों का ठेकेदार आर्थिक शोषण करते हैं इस संदर्भ में डी. एन. मजुमदार ठीक लिखते हैं कि, ''आदिवासी गुरासारखे काम करतात व त्यांना वागणुक देखिल गुरांसारखीच दिली जाते. एखाद्या पशु प्रमाणे ते प्रदर्शनीय ठरतात. पशु प्रमाणेच त्यांना नियंत्रित ही केले जाते.''[१] देश में नए–नए बसनेवाले लोह, पोलाद, सिमेंट, बीजलीघर, बांध आदि योजना से आज तक लाखों आदिवासियों को विस्थापित होना पड़ा हैं, उनका उचित पुनर्वसन नहीं किया गया है। इस प्रकार दरिद्रता, कुपोषण, बेकारी, ऋणग्रस्तता, बंधुआ मजदूरी, घटते जंगल, विस्थापन आदि आदिवासियों की प्रमुख आर्थिक समस्याएँ हैं।

**राजनीतिक समस्या :**

आदिवासी समाज की अपनी एक विशिष्ट राजनीतिक व्यवस्था प्राचीन काल से लेकर ब्रिटिश काल तक अस्तित्व में थी। आदिवासियों की सभी समस्याओं को यहीं पर ही सुलझाया जाता था । हर जनजाति का प्रतिनिधि या नेता इस व्यवस्था का सदस्य रहता था किंतु स्वातंत्रोत्तर काल में इनकी राजकीय व्यवस्था का ऱ्हास हो रहा है। भारतीय संविधान द्वारा प्रयुक्त चुनावी प्रक्रिया अज्ञानी आदिवासियों के लिए पूर्णतः नवीन है, जिसमें केवल रईसों, पूँजीपतियों और गुंड़ों का बोलबाला है, दूसरी ओर इस समाज को स्वयं के अधिकार, कर्तव्य और वोट का मूल्य ज्ञात नहीं है जिसका लाभ उठाकर ऐसे लोग उनके अमूल्य वोट शराब आदि के बदले खरिद लेते हैं। परिणामतः इस समाज जीवन में जो परिवर्तन आना चाहिए [illegible] नहीं आया। अपनी अविकसित परिस्थिति से [illegible] आदिवासियों की नई पीढ़ी में विद्रोह की भा[illegible] [illegible]त्तर होती जा रही है। आदिवासी यु[illegible] के इस असंतोष का लाभ नक्सलवादी [illegible] प्रदेशों में एक समांतर सरकार प्रस्थापित [illegible]। उचित नेतृत्व के अभाव में आदिवासी बहु[illegible] प्र[illegible] में भी आदिवासी आज तक सत्ता से दूर [illegible] रहा है। सरकार आदिवासियों के विकास पर ध्यान देने की अपेक्षा नक्सलवाद को समाप्त करने का प्रयास कर रही है, जिससे यह संघर्ष अधिक तीव्र हो रहा है।

**धार्मिक समस्या :**

आदिवासी समाज का अपना एक विशिष्ट प्राकृत धर्म है। जैसे उराँव का 'सरणा धर्म' है। इनकी धार्मिक श्रद्धा में सर्वात्मवाद, जीववाद, बहुदेवतावाद, एकेश्वरवाद, जादू–टोना, प्रेतात्मा आदि का समावेश होता हैं। धर्म ही आदिवासी समाज के सामाजिक नियंत्रण का प्रभावी साधन है किंतु आदिवासी समाज की प्रमुख धार्मिक समस्या धर्मांतर की हैं। हजारों वर्षों से आदिवासियों को अपना धार्मिक अस्तित्व बचाने के लिए आर्य, ईसाई और मुसलमान धर्म से संघर्ष करना पड़ा है, जो आज भी जारी है। इस्लामी आक्रमणकारियों ने तलवार के बल पर उनको मुसलमान बनाया तो ''मुसलमान सूफियों ने दलितों के साथ आदिवासी क्षेत्रों में समता का प्रचार कर उनके खान–पान में सम्मिलित होकर उन्हें इस्लाम का अनुयायी बनाया हैं।''[२] भारत में आए ईसाईयों के सेवाभाव और मानवतावाद से प्रभावित होकर और हिंदू धर्म के राजाओं की मनमानी जमींदार के अत्याचार, शोषण, बेठबिगारी और आतंक से तंग आकर लाखों की संख्या में आदिवासी ईसाई बने उसमें भी अधिकतर आदिवासियों को अंग्रेजों ने छल और बल से ईसाई बनाया। आज आदिवासी क्षेत्र में अनेक हिंदू संघटन, धर्माचारी, मठाधिश, 'आदिवासियों की घर वापसी' के नाम पर उन्हें हिंदू बना रहे हैं, जो आदिवासियों की प्रमुख धार्मिक समस्या है किंतु हजारों सालों से धर्मांतर की प्रक्रिया में रहते हुए भी आदिवासियों के जीवन में कोई अंतर नहीं आया हैं, हाँ इतना जरूर हुआ है कि वे अपने मूल समूह से अलग हो गए हैं।

का तो जिक्र ही क्या ?।" इस प्रकार कुपोषण, दूषित पानी, शारीरिक अस्वच्छता, औद्योगिक प्रदूषण, अंधविश्वास, अज्ञान और आरोग्य सुविधाओं का अभाव के कारण आदिवासी समाज में अनेक बिमारियों का प्रचलन बढ़ रहा है परिणामत: उनका स्वास्थ्य खतरे में आने लगा।

उपरोक्त सभी समस्याएँ आदिवासी समाज की है, वे केवल आदिवासी पुरूषों की या महिलाओं की समस्या नहीं है तो कुल आदिवासी समाज ही प्रगत समाज से अनेक बिंदुओं पर हजारों साल पीछड़ा हुआ है, इसीलिए आदिवासी स्त्री या पुरूष ऐसा विचार यहाँ पर अपेक्षित नहीं है। स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार तथा राज्य सरकार अपने संवैधानिक उत्तरदायित्व के अनुरूप आदिवासी समाज के विकास और उत्थान के लिए विभिन्न योजनाओं के माध्यम से प्रयास कर रहे है आवश्यकता हैं यह योजनाएँ पूरी तरह उन तक पहुँचाने की। इसके साथ ही आदिम जाति सेवक संघ, वनवासी कल्याण आश्रम, भील सेवा मंडल, प्रकाश आमटे, अभय बंग, स्वामी अग्निवेश, मेधा पाटकर, रमणिका गुप्ता, के. आर. शहा जैसे अनेक आदिवासी तथा गैर आदिवासी स्वयंसेवी संस्थान–व्यक्ति आदिवासियों की सामाजिक, आर्थिक उन्नति के लिए कार्यरत है, जिससे आदिवासियों का यथायोग्य विकास होकर वह राष्ट्र की मुख्य धारा में आने की आशा की जा सकती है।

## संदर्भ सूची

१ डॉ. डी. एम. मजुमदार/टी. एन. मदन, सामाजिक मानववंशशास्त्र का परिचय, पृ.सं. १७४

२ सं. के. आर. शहा, पत्रिका मासिक आदिवासी सत्ता, जुलाई २०१० पृ.सं., १९

३ डॉ. डी. एन. मजुमदार, भारत की जन संस्कृति, पृ.सं. ११५

४ वही, पृ.सं. ११०

५ वही, पृ.सं. १२२

❑❑❑

60

# समकालीन हिंदी उपन्यासों में दलित चेतना

डॉ.वसंत पुंजाजीराव गाडे
हिंदी विभागप्रमुख,
नागनाथ महाविद्यालय, औंढा नागनाथ

**********

इ.स. १९६०–६५ के आसपास दलित आंदोलन का प्रारंभ हुआ। दलित – साहित्य शब्द के संकुचित अर्थ के अनुसार दलित जाति के साहित्यिक व्दारा रचित दलितों सम्बधी साहित्य ही दलित साहित्य कहलाता है। अर्थात केवल नव बौध्दों, अस्पृष्यों या जिन पर हजारों वर्षो से अन्याय हुआ है, ऐसे दबे हुऐ हरिजनों, आदिवासियों से सम्बधित, परंतु उनकी ही जाति में उत्पन्न साहित्यिक के व्दारा लिखा गया साहित्य दलित साहित्य है। दलित चेतना या दलित अनुभूति का पहला विस्फोट मराठी में कविता तथा आत्मकथा इन दो विधाओं में पूरी सशक्तता के साथ हुआ। जब इन मराठी रचनाओं के हिंदी अनुवाद छपने लगे, तो उससे प्रेरणा लेकर हिंदी में दलित अनुभूति व्यक्त होने लगी। दलित चेतना मूलत: वर्ण – व्यवस्था के तहत जारी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दमन के प्रतिरोध और प्रतिकार की चेतना है। दलित चेतना जातिवाद दंश से उपजा सवाल है जो साहित्य के स्तर अंधश्रध्दा शब्द प्रामाण्य, ग्रंथ प्रामाण्य, आत्मा, ईश्वर और उस पर आधारित समस्त नैतिकता और धर्मसत्ता को अस्वीकार करता है। दलित समाज सदियों से पीछडा हुआ समाज है। प्राचीन काल से इस समाज–समूह पर अन्याय–अत्याचार उच्चवर्णीय लोगों व्दारा होता आया है। उन्हें शिक्षा लेने का अधिकार न होने के कारण उनमें अंधश्रध्दा, अज्ञान का फेलाव होने के कारण उच्चवर्णीसयों ने उनका शारीरिक, आर्थिक तथा मानसिक शोषण करके उनका मनुष्य रूप में जिने